जीवन

चन्द्रिका सिंह 'करुणेश'

अग्रवाल प्रेस
इलाहाबाद

एक रुपया पचास न० पै०
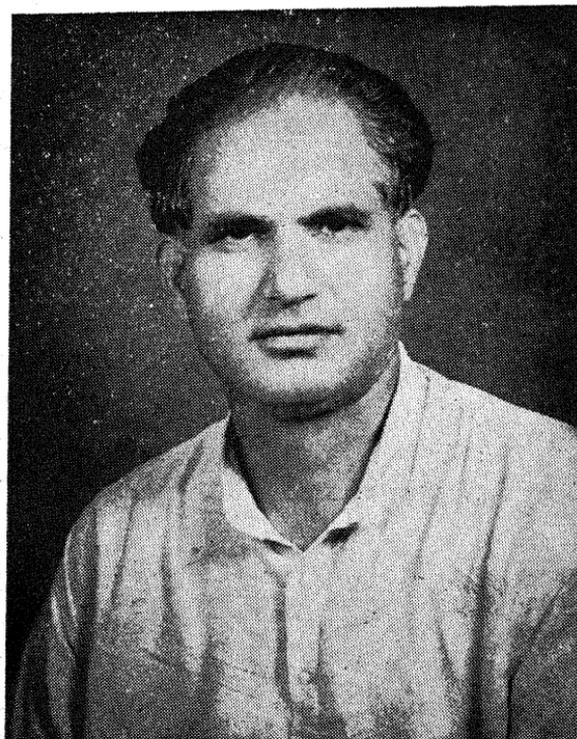
चन्द्रिका सिंह 'करुणेश'

परिचय

प्रभावशाली व्यक्तित्व, मोहक मुखाकृति, पराई पीर से पीड़ित हृदय, विद्रोही मन तथा स्पन्दित प्राण, इन्हीं सबके मिश्रण से जो चित्र बनता है वही हैं कवि 'करुणेश।' कविवर चन्द्रिका सिंह 'करुणेश' को जन्म देने का श्रेय प्रतापगढ़ जिले के चाहिन पूरे हनुमान सिंह नामक ग्राम को प्राप्त है। करुणेशजी का जन्म २८ अगस्त सन् १९१५ ई० को हुआ था। आपके पिता स्वर्गीय श्री शिव मंगलसिंह के आन्तरिक स्वरूप का निखार कवि 'करुणेश' में भली-भाँति देखने को मिलता है।

करुणेशजी आगरा विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में दो वर्ष तक सब-डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स के पद पर रहे। किन्तु आपका विद्रोही मन इस प्रकार के कार्य में शान्ति न पा सका जिसके कारण सरकारी नौकरी छोड़कर तीन वर्ष तक पी० बी० कालेज, प्रतापगढ़ सिटी में अध्यापक रहे।

सन् १९४७ में, स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव की प्रेरणा से, विद्रोही भावनाओं को साकार रूप देने के लिए कवि करुणेश ने समाजवादी आन्दोलन में सक्रिय रूप से अपने को समर्पित कर दिया। स्वतंत्र भारत में भी सात बार जेल यात्रा की यातनाओं से टकराये। सोसलिस्ट पार्टी, उत्तर प्रदेश के प्रधान मंत्री तथा प्रजासोसलिस्ट पार्टी के संयुक्त मंत्री के रूप में देश के समाजवादी अन्दोलन को अपना योगदान देते रहे।

'समाजवाद की स्थापना कांग्रेस के द्वारा ही सम्भव है' अपने इस विचार के अनुसार करुणेश जी इसी सन् १९६३ से कांग्रेस में वापस आ गये।

करुणेश जी के जीवन के दो पक्ष हैं—राजनीति और कविता। एक की झाँकी ऊपर दी जा चुकी है। काव्य-पक्ष का निखार 'जी न' की रचनाओं में देखने को मिलेगा। उनके गीतों में पाठक एक नया दृष्टि-कोण पायेंगे। 'अवनि के शशि हमारे हैं, गगन का चाँद क्या देखूँ'; 'धरती में कितना रस है, आकाश भला क्या जाने'; 'उगल रहा था डर के मारे जगको साँप अन्धेरा' जैसी अनेक उक्तियाँ उनकी अपनी विशेष-ताएँ हैं। मौलिक रूप से करुणेश जी प्रेम और क्रान्ति के गायक हैं। वर्तमान हिन्दी-जगत को करुणेश जी से नये मोड़ की आशाएँ हैं।

समस्त प्राणि-मात्र के लिए सदैव स्पन्दित रहने वाले 'करुणेश' जी का जीवन निरा एकाकी है। उनके इस एकाकीपन की अभिव्यक्ति उनकी इस पंक्ति में निहित है—'पंछी तुम मत नीड़ बनाना।'

—प्रकाशक

अपनी बात

'मजदूर का सपना' में अपनी बात के अन्तर्गत मैंने लिखा था कि छपाई की प्रबल उत्कंठा रहने पर भी मेरे स्वाभिमान ने कभी किसी प्रकाशक के सामने मुझे रिरियाने नहीं दिया। आज 'जीवन' के प्रकाशन के समय भी उसी बात को दुहरा लेना चाहता हूँ। 'जीवन' में मेरे अब तक के लगभग सभी गीतों का संकलन है। मेरी सवैयों, नजमों और रुबाइयों के संग्रह भी निकट भविष्य में पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगे, ऐसी आशा मैं करता हूँ।

इस संग्रह की रचनाओं में मेरी काव्य-साधना कहाँ तक सफल हुई है इसका निर्णय तो सहृदय पाठकों की जिम्मेदारी है। मैं तो यही कह सकता हूँ कि इन कविताओं की सृष्टि करके मेरे हृदय को सुख तथा मेरे प्राणों को शान्ति मिली है। पाठक भी इस सुख और शान्ति के साझेदार बन सकें, यही इन कविताओं की सार्थकता होगी।

पी० बी० कालेज, प्रतापगढ़ के अध्यापक द्वय—श्री बैजनाथ सिंह तथा श्री आद्या प्रसाद सिंह के सक्रिय सहयोग से ही 'जीवन' का प्रकाशन संभव हो सका है। मैं इन मित्रों का आभारी हूँ। पांडुलिपि तैयार करने में 'शंभू' तथा प्रताप' छात्रावास के विद्यार्थियों के सहयोग के लिए उनके प्रति भी आभार प्रदर्शन करता हूँ।

इलाहाबाद
अक्टूबर ६, १९६३। करुणेश

विषय-सूची

जीवन

जो भी क्षण उनके सँग बीते—
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

कलियाँ चटकें, भँवरे भटकें—
इससे मधुमास नहीं होता।
कोयल कूके पपिहा हूके—
इससे मधुमास नहीं होता।

वे हों, मधु हो, मरुथल ही हो—
मैं उसको मधुवन कहता हूँ।
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

पावस ही क्यों, यों हर ऋतु में—
बादल कुछ नीर बहा जाते।
चपला औ इन्द्रधनुष मिलकर
मन को कुछ पीर सहा जाते।

वे हों, प्रेमाश्रु भरे दृग हों—
मैं उसको सावन कहता हूँ।
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

ये हव्य, हवन, अक्षत, चन्दन—
अर्चन इनको कैसे मानूँ?
नर्तन, कीर्तन सबका कुछ क्रम—
वन्दन इनको कैसे मानूँ?

वे हों कुछ और न होश रहे—
मैं उसको पूजन कहता हूँ।
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

ये मृत्यु-जाल के फन्दे क्या?
इनसे केवल तन बँध पाते।
दुनिया के गोरख-धन्धे क्या?
इनसे केवल मन बँध पाते।

जिस प्रेम-पाश से प्रान बँधें—
मैं उसको बन्धन कहता हूँ।
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

साँसों की गति से आयु गिनूँ—
मानूँ क्यों इतनी मजबूरी?
बरसों के पग से क्या नापूँ?
इस जीवन-यात्रा की दूरी।

जो मंजिल उनके सँग तय हो—
मैं उसको यौवन कहता हूँ।

वे हों, मधु हो, मरुथल ही हो–
मैं उसको मधुवन कहता हूँ।
वे हों, प्रेमाश्रु भरे दृग हों—
मैं उसको सावन कहता हूँ।
वे हों, कुछ और न होश रहे—
मैं उसको पूजन कहता हूँ।
जिस प्रेम-पाश से प्रान बँधें—
मैं उसको बन्धन कहता हूँ।
जो मंजिल उनके सँग तय हो—
मैं उसको यौवन कहता हूँ।
मैं उसको जीवन कहता हूँ।

नाविक से

धीरे - धीरे करता पयान।
नाविक ! इस सागर में अविचल—
खेता चल अपना श्वास-यान ।
करता पयान, धीरे - धीरे।

सुख-दुख की लहरों में फँसकर—
डगमग निज तरनी लख जल पर—
पतवार न रख देना थक कर।
है पार पहुँचना, रहे ध्यान।
करता पयान धीरे - धीरे।

उस पार न पहुँच सका तो क्या ?
मझधार में डूब गया तो क्या ?
इस पार भकटने वालों को तो—
मिल जायेगा यक निशान।
करता पयान, धीरे - धीरे।

संभव है कोई नवजवान,
मर मिटने में अमरत्व जान,
तय करले यह यात्रा महान,
तुझको अपना आदर्श मान।

खेता चल अपना श्वास-यान ।

धीरे - धीरे ॥

जीवन-पहेली

जीवन की जटिल पहेली।

जग के उपवन में जिस दिन—
निकला था इसका अंकुर।
किसको था पता कि बढ़कर—
होगा यह कैसा तरुवर ?

तब थी अज्ञात पहेली।
जीवन की जटिल पहेली।

फिर भी सुख की आशा से—
था सबने इसको पाला।
अपनी अनुराग - सुधा का—
देकर प्याले पर प्याला।

थी सुख से भरी पहेली।
जीवन की जटिल पहेली।

पर यौवन ही के सँग-सँग—
आईं कुछ अजब हवायें,
ऐसे लखते ही लखते—
उड़ गईं सभी आशायें—

उलझी बस तभी पहेली,
जीवन की जटिल पहेली।

अब इसके सुलझाने का—
मैं भार लिये फिरता हूँ—
कोई क्या जाने? कितने—
उद्गार लिये फिरता हूँ?

माया की सगी सहेली,
जीवन की जटिल पहेली।

किससे मिलकर सुलझाऊँ,
या किससे रोऊँ रोना?
मैं यों ही मस्त रहूँगा—
होगा जो कुछ है होना।

बिगड़े या बने पहेली।
जीवन की जटिल पहेली।

प्रकृति-संगीत

दिनपति बस विदा हुए थे,
थी गोधूली की बेला,
उनकी स्मृति ही सँग थी,
यों था मैं निरा-अकेला।

मरघट था, उन्मन मन था,
सन्मुख सरिता गाती थी।
हर लहर-लहर से मिलकर,
सुख-दुख कहती जाती थी।

जल पर नन्ही-सी डोंगी,
माँझी खेये जाता था।
उस पार पहुँच जाने को—
आशा से कुछ गाता था।

गगनाँगन में घन-शावक,
चपला से खेल रहे थे।
कितने बेचारे रोकर—
जीवन-दुख झेल रहे थे।

कुछ दूर क्षितिज से मिलकर
बक पाँति उड़ी जाती थी,
नीलम-पट पर मुक्ताओं, की—
लड़ी जड़ी जाती थी।

वह मध्य प्रान्त पथरीला,
वह रम्य नगर भंडारा,
मन मोहक गिरि मालायें,
वह जंगल प्यारा प्यारा।

मैं मंत्र मुग्ध सा बैठा
जाने क्या सोच रहा था।
जीवन-लतिका से, उलझन की
कलियाँ नोच रहा था।

सहसा कोकिल--कलरव से,
वह गूँज उठी अमराई।
पर, अरे! कहीं से भी तो
उसकी न प्रतिध्वनि आई।

गा उठी प्रकृति, 'ऐसे ही—
सब आहें खो जाती हैं।
वे जग में भटका करतीं,
पर प्यार नहीं पाती हैं।"

उषा से

अरुण बसने हे उषे ! कुमारि !
कहाँ सीखा था तुमने देवि !
विश्व हित करना तमसे रारि ?
उषे ! कुमारि !

अभी संध्या ही की तो बात—
जा रहा था जब रवि स्वच्छन्द।
व्यर्थ में रजनी ने था किया—
उसे निज कारागृह में बन्द।

देखकर ऐसा अत्याचार—
क्रुद्ध नभ ने उगले अंगार—
किन्तु वे सब ठंढे हो गए—
यहाँ की जैसे लगी बयार।

जुगनुओं ने कुछ मारा जोर—
जलाये मनुज जाति ने दिये।
बुझी कब लेकिन किसकी प्यास—
विश्व में अरे ओस के पिये।

प्रकृति तो थी मूर्छित हो गई,
ओस के मिस बादल रो पड़े,
पवन था क्या जाने क्यों मौन
कौन था फिर उससे जो लड़े ?

अकेली तुम जाने किस तरह—
रात्रि का यों करके अवसान—
मुक्त कर लाई हो रवि-बाल
जगत को देने जीवन-दान।

बता दो ना हमको भी देवि।
वही अपनी अनुपम तदबीर।
कि जिससे हम भी डालें तोड़,
दुखद परवशता की जंजीर।

खिल उठे अखिल विश्व के प्राण—
क्योंकि भारत ही की स्वतंत्रता में
तो छिपा विश्व-कल्याण—
सकल शोषित जनता का त्राण।

उषे ! कुमारि !

दीपक से

एक मुट्ठी मिट्टी के दीप !
कहाँ पाया ऐसा जीवन—
त्यागमय यह पावन जीवन ?

धूलि-जल-मिश्रण, कर-मर्दन ।
दंड-संचरित-चक्र-नर्तन,
तरनि-कर-निकर-प्रज्ज्वलित ज्वाल,
दग्ध ग्रावाँ की लपट कराल ।

विश्व-सेवा-हित यह सब पीर
धन्य हो तुम सहते वर वीर ।
बना लो अपना-सा जीवन—
सफल मेरा नश्वर जीवन ।

कहाँ पाया ऐसा जीवन ?
एक मुट्ठी मिट्टी के दीप ।।

दीन दुखियों के दुख-हर दीप !
कहाँ पाया ऐसा जीवन ?
निरन्तर पर-हित-रत जीवन ।

फटी ओढ़नी निज सिर पर डाल,
कुम्हारिन बिखरे बाल सँभाल,
उदर ले भूख, शीश तव भार,
'दियालेलो' कहती सब द्वार ।

शीघ्र सुन पायल की छम छम
मलिकिनें कहतीं थम् थम् थम् ।
और दे उसे तनिक सा अन्न,
तुम्हें पा होतीं परम प्रसन्न ।

किन्तु क्या यही तुम्हारा मूल्य ।
नहीं, तुमतो हो बन्धु अमूल्य ।
बुझाने को अबला की भूख
वीर तुम बिक जाते बन मूक ।

बना लो अपना-सा जीवन
सफल मेरा नश्वर जीवन ।
कहाँ पाया ऐसा जीवन ?
एक मुट्ठी मिट्टी के दीप !
दीन-दुखियों के दुख-हर दीप !

क्रान्तिकारी नन्हे-से दीप !
कहाँ पाया ऐसा जीवन ?
अभय, अविचल, अनुपम जीवन ।

छीन कर दिन का सुन्दर राज
निशा करती निज दुखप्रद राज
तभी हरने को जग का तम—
जलाते तुम निज तन प्रियतम।

पतङ्गे फिर भी देते कष्ट—
उन्हें तुम क्षण में करते नष्ट—
इसी से नारि हृदय कोमल
ओढ़ाता तुमको स्नेहाञ्चल।

बनालो अपना-सा जीवन
सफल मेरा नश्वर जीवन।
कहाँ पाया ऐसा जीवन।

एक मुट्ठी मिट्टी के दीप!
दीन-दुखियों के दुख-हर दीप!
क्रान्तिकारी नन्हे से दीप!
मनुज के हे चिर सहचर दीप!

कहाँ पाया ऐसा जीवन?
स्नेहमय रहते आजीवन।

छोड़ माता का उदर-उदार—
मनुज जब आता इस संसार—
तुम्ही दे उसको प्रथम प्रकाश—
न होने देते कभी निराश।

अन्त में भी जब सब तज साथ—
भस्म कर देते उसका गात—

अरे मरघट में सारी रात—
किया करते तुम उससे बात।

अटल हो यह तव सम्मेलन—
न करना हो विच्छेद सहन
बना लो अपना-सा जीवन
सफल मेरा नश्वर-जीवन।

कहाँ पाया ऐसा—जीवन ?
एक मुट्ठी मिट्टी के दीप !
दीन-दुखियों के दुख-हर दीप !
क्रान्ति कारी नन्हे से दीप !
मनुज के हे चिर-सहचर-दीप !

झूमते बुझते-से हे दीप !
कहाँ पाया ऐसा जीवन ?
अरे यह मस्ती का जीवन।

निरख निज-सन्मुख मारुत-मृत्यु—
मस्त तुम करने लगते नृत्य—
स्वयं बढ़ उसको लेते चूम—
छोड़ जाते मर कर भी धूम

यही तो इस जीवन का तत्व—
तुच्छ जिसके समक्ष अमरत्व।
बना लो अपना-सा जीवन—
सफल मेरा नश्वर जीवन।
कहाँ पाया ऐसा जीवन ?

एक मुट्ठी मिट्टी के दीप !
दीन-दुखियों के दुख-हर दीप !
क्रान्तिकारी नन्हे से दीप !
मनुज हे चिर-सहचर दीप !
झूमते बुझते-से हे दीप !

बनबाला का गीत

कल शाम, यहीं, वह बनबाला—
पत्थर पर बैठी, गाती थी,
प्रिय गीत-ददरिया*-मतवाला
वह बनबाला ॥

सिकता की वह शैया श्यामल,
सरिता कहती थी 'कल-कल-कल'
निशिपति की किरनें खेल रही थीं—
नीर-संग झलमल-झलमल ।

था पास उसी के भरा घरा,
उसका झमझर काला काला ।
वह बनबाला ॥

तन पर बस फूलों के गहने—
थी एक हरी सारी पहने—

---

* छत्तीस गढ़ का एक प्रकार का प्रेम गीत ।

थे बाल खुले, जिनको समीर—
देता था कभी न थिर रहने।

यद्यपि उनके ऊपर से वह
बाँधे थी घुमची की माला
वह बनबाला ॥

कुछ चकित सशंकित-सी थी वह,
भय से कुछ कम्पित-सी थी वह,
स्वर से होता था यही ज्ञात
बस विरह-व्यथा पीड़ित थी वह,

इतने में जंगल से निकला
अल्हड़-सा यक लकड़ीवाला।
वह बनबाला ॥

खिल उठी उसे आया लखकर
औ बोझ उतारा झट उठकर,
कुछ कहे, सुने, फिर बिलग हुये
अपना अपना बोझा लेकर।

क्षण भर के मधुर-मिलन ने ही
दो हृदयों का दुख धो डाला,
वह बनबाला ॥

पर आज वहीं पर लखो, आह,
वह सरिता का मुखरित प्रवाह,
उस सुमुखी का शव डुबा रहा—
जिसने कल ही था किया व्याह।

निर्दयी सर्प ने छलकाया
निशि में उसका जीवन-प्याला ।
वह बनबाला ।।

करुणेश ! जगत का यह लेखा,
हमने अपनी आँखों देखा,
इस विश्व-पट्टिका पर अपनी भी—
अमिट कहाँ जीवन-रेखा ?

लेकिन क्या चिन्ता, जब साथी !
तू नित सँग में रहने वाला ।
वह बनबाला ।।

तुम्हारा दिया प्रेम का फूल

तुम्हारा दिया प्रेम का फूल—
किये हैं सुरभित प्राणोद्यान,
नवल जीवन-तरुवर में फूल।
तुम्हारा दिया प्रेम का फूल ॥

पल्लवित रे आशा की डाल,
उल्लसित इच्छा-मधुकर बाल—
सुखप्रद शान्ति अनिल की चाल,
हो गई स्वयं सरस, अनुकूल।
तुम्हारा दिया प्रेम का फूल ।

प्रदर्शित कण-कण में मधुमास—
आज फूले सौभाग्य-पलास—
स्वास की टहनी पर कर बास—

कूकता उर-पिक उलझन भूल ।
तुम्हारा दिया प्रेम का फूल ॥

मुग्ध माली के मादक गान,
सुखी मानवता के वरदान,
हुये मधुमय दो उर अनजान,

नियति मालिन हरती दुख-शूल ।
तुम्हारा दिया प्रेम का फूल ॥

कौन जाने वह कैसा देश

कौन जाने वह कैसा देश ?
सब कुछ यहीं छोड़ चलना है—
अपने को जिस देश।
वह देश—

कितने दिन की राह वहाँ की—
उसमें कितने क्लेश।
उसकी प्रजा रँगी है किस रँग ?
किस रँग रँगा नरेश ?
कौन जाने—

अतिथि जनो के सँग में—
होता है कैसा व्यवहार ?
स्वागत कर पथ-श्रम हरते—
या देते कष्ट विशेष ?
कौन जाने—

कुछ भी हो, पर जब अपने को
निश्चय ही चलना है।
यात्रा का सामान हर समय—
करता चल 'करुणेश'।
कौन जाने—

कहाँ से सुख-शान्ति पाऊँ ?

कहाँ से सुख-शान्ति पाऊँ ?
भग्न उर के बीन पर—
कैसे मिलन के गीत गाऊँ ?

वेदना, उद्वास, कसक—
विषाद के डेरे पड़े हैं,
विपति, चिन्ता, टीस, उलझन,
दुःख सब घेरे पड़े हैं।

अरे इस पीड़ित हृदय में—
और किस किसको बसाऊँ ?
कहाँ से—

दूर, इतनी दूर, तुम तक—
आह भी तो जा न पाती,
चिर मिलन की साध पगली—
सिसकती औ छटपटाती।

किसे अपना दुःख सुनाऊँ ?
किसे विदरित हिय दिखाऊँ ?
कहाँ से सुख शान्ति पाऊँ ?

शान्ति कहाँ साथी जीवन में

शान्ति कहाँ साथी जीवन में ?
मैं तो कहता भेद न कोई
जीवन औ उलझन में।
शान्ति कहाँ ?

लुट जाती यह कभी सुखों से,
छिन जाती यह कभी दुखों से,
सुख-दुख के दो घातक पंछी,
मँडराते नित हृदय-गगन में।
शान्ति कहाँ ?

आँसू लिये निराशा आती,
तनिक हँसा आशा भग जाती,
आशा और निराशा की—
दो कलियाँ विकसित मन-उपवन में, ।
शान्ति कहाँ ?

कितने कहते, मर जायेंगे,
तब अशान्ति से टर जायेंगे,
लेकिन किसकी मृत्यु कहाँ ?
जब छिपा जन्म प्रत्येक मरन में।
शान्ति कहाँ साथी जीवन में ?

किसी की याद है, मैं हूँ

अकेला कैसे कहते हो—
किसी की याद है, मैं हूँ।

मधुर मुसकान, वह चितवन,
लजीला रूप, वह यौवन,
सभी हारे, न हारा बस—
किसी का भोला अल्हड़पन।

कसक जिससे मिली दिल को—
वही बुनियाद है, मैं हूँ।
किसी की याद है—

सरल, घातें, सरस बातें,
भुला देना असंभव है।
सुनहरे दिन, रजत रातें,
भुला देना असंभव है।

जिसे कह-सुन हृदय रोता—
वही फरियाद है, मैं हूँ।
किसी की याद है—

बधाई है जिन्हें आता—
किसी की सुधि भुला देना।
बधाई है जिन्हें भाता—
नई बस्ती बसा लेना।

प्रेम है वासना, जिस बिन—
वही मर्याद है, मैं हूँ॥
किसी की याद है, मैं हूँ।

सुख-दुख

'करुणेश' अरे इस जग का—
है बड़ा विचित्र तमाशा—
इसमें अब तक न बनी है—
सुख-दुख की कुछ परिभाषा।

ऐश्वर्यों ही के ऊपर—
यदि सुख अवलम्बित होता,
तो कारूँ इस दुनिया से
काहे को जाता रोता।

पकवान अनेकों खाकर—
धनिकों को शान्ति न आती,
पर दीन भिखारिन-जीवन भर,
रहती भूखी गाती।

मैंने तो जीवन में,
है बस इतना ही जाना
सुख वही जिसे सुख समझा,
दुख वही जिसे दुखमाना।

विश्व-वेदना

जगत के आनँद-रोदन में,
न जाने उलझाता मन को—
कौन औरों की उलझन में
जगत के—

मुझे सुखियों के सुख से क्या ?
मुझे दुखियों के दुख से क्या ?
किन्तु ये क्रम से, भरते क्यों—
हृदय में सुख, जल लोचन में ?
जगत के—

उषा की स्वर्णिम लाली में,
श्याम बसना वैकाली में—
उच्छ्वसित मन को करता कौन ?
छिपा विहँगों के कूजन में
जगत के—

विश्वबन्धुत्व इसे कहलें।
आत्मवत तत्व इसे कहलें।
जगाता विश्व-वेदना जो—
प्रान के इस अपनेपन में।

जगत के—

बादल से

गगनाँगन के अल्हड़ बादल !
बरसो, हो जिससे जगत सुखी,
भटको मत यों निशि-दिन निष्फल,
अल्हड़ बादल !

वारिध नें जीवन-दान दिया,
नभ में ऊँचा स्थान दिया।
दुनिया ने मान प्रदान किया,
पर, वैभव पर न बनो पागल।
अल्हड़ बादल !

विस्तृत नभ का कोई कोना—
है भला तुम्हारा कब होना ?
दिन दो दिन भटक भले ही लो—
पर मिट जाना है, सत्य अटल।
अल्हड़ बादल !

देखो - देखो भूपर नीचे—
श्रम-स्वेद-बिन्दु से मुख सींचे—
वह कृषक बालिका माँग रही कुछ
फैलाये फटहा आँचल।
अल्हड़ बादल !

दे दो ना उसको नीर-दान—
पा जाये कुछ सुख वह अजान,
उसके सँग यह सारा जहान,
औ हो जाये तव जन्म सफल।
अल्हड़ बादल !

अब कहाँ वह बात साथी

अब कहाँ वह बात साथी ?
हाय लूटा किसी ने
मेरा सुनहरा प्रात साथी।
अब कहाँ वह बात, साथी।

धूल में भी सने रहने पर—
सदा राजा कहाना।
औ स्वनिर्मित लघु जगत का—
राज वह, ऊधम मचाना।

प्यार ही के झूलने पर
झूलना दिन रात साथी।
अब कहाँ वह बात, साथी ?

देखते ही देखते, लेकिन—
लुटा संसार मेरा,

झिलमिलाकर दीप आशा का बुझा
छाया अँधेरा।
आज अपनों के लिये भी
हो रहा अज्ञात साथी,
अब कहाँ वह बात साथी ?

विश्व में मैं हूँ अकेला,
साथ बस जीवन-पहेली,
आपदायें औ निराशायें,
यही इसकी सहेली।

अरे ! अब किसको दिखाऊँ,
हृदय के आघात साथी।
अब कहाँ वह बात साथी ?

क्या यही है प्यार तेरा ?

क्या यही है प्यार तेरा ?
स्नेह जीवन दीप में,
औ मार्ग हो मेरा अँधेरा,
क्या यही है प्यार तेरा ?

हैं सकल वैभव तुझी में,
और सब संसार तेरा,
किन्तु इनके एक कण पर भी,
नहीं अधिकार मेरा।
क्या यही है प्यार तेरा ?

तू है मुझमें, मैं हूँ तुझमें,
यह तो दुनिया जानती है,
फिर भला यह भेद क्यों ?
जो सब है तेरा, कुछ न मेरा ?
क्या यही है प्यार तेरा ?

इस लिये 'करुणेश' अपने में—
मिला ले मेरा 'मेरा'।
सब हो तेरा, सब हो मेरा,
कुछ न तेरा, कुछ न मेरा,।

इस तरह हो प्यार तेरा,
क्या यही है प्यार तेरा ?

अरे ! मैं अपने से अनजान

अरे ! मैं अपने से अनजान।
जिसको जो भावे सो समझे,
मुझे न अपना ज्ञान।
अरे ! मैं अपने से अनजान।

कहाँ से आया हूँ इस देश ?
लौट फिर जाऊँगा किस देश ?
चला था लेकर क्या संदेश ?
हाय ! इसका कुछ मुझे न ध्यान।
अरे ! मैं अपने से अनजान।

नहीं है इसमें कुछ भी सार,
अरे यह क्षण-भंगुर संसार—

किन्तु इससे ही प्यार अपार,
इसी पर है मुझको अभिमान
अरे ! मैं अपने से अनजान।

बता दो कोई ऐसी बात,
कर सकूं जिससे तुमको ज्ञात
रहेगा तब फिर क्या अज्ञान,
छिपी तुममें मेरी पहचान।
अरे ! मैं अपने से अनजान।

प्राणों के कुछ तिनके

प्राणों के कुछ तिनके—
कब से लिए घूमता हूँ मैं—
एक-एक, गिन-गिन के।
कुछ तिनके ॥

विश्व-वृक्ष की किसी डाल पर,
इनको कोई चुनकर,
जाने क्या सुख पाता, मेरे
अटपट कलरव सुनकर।

किन्तु तुरन्त उजड़ना पड़ता।
कहाँ अनन्त बसेरा?
नित्य नई संध्या आती है,
हरदम नया सबेरा।

युग-युग का इतिहास यही है,
नित की यही कहानी,
अरे ! इसी को कहते-सुनते
दुनिया हुई पुरानी।

असह्य हो गये हैं अब तो—
परिवर्तन ये छिन-छिन के।
प्राणों के कुछ तिनके।

जीवन-कलश

प्रकृति पनिहारिन थी उस रोज—
तब गले बाँध कर्म की डोर,
काल के चिर विरचित, तम पूर्ण—
कूप से लाई तुझको बोर।

सींचने को मानवता-बेलि,
सुरभिमय करने को संसार,
सँजोये श्वास-शक्ति का नीर,
नियति बाला चलती शिर धार।

प्रज्वलित दानवता की आग,
आज जगती के सूखे प्राण,
विश्व का कण-कण रहा कराह,
शान्ति रे शान्ति त्राण रे त्राण !

शिथिल हो बैठ रहे सब यहीं—
निकट यद्यपि गन्तव्य स्थान,
पहुँच जायें ये सब उस पार,
अगर दे दे तू जीवन-दान

श्रान्त पथिकों के प्यासे नेत्र—
ताकते हैं सब तेरी ओर।
छलक उठ, हो जाये जग तृप्त,
तुझे वह लायेंगी फिर बोर॥

अरे ! मेरे रुदन को

अरे ! मेरे रुदन को—
तुम गा रहे क्यों गीत कहकर ?

इसी में तो छिपी है—
मेरी अलौकिक वह कहानी,
प्रलय जल भी धो न सकता—
जगत से जिसकी निशानी।

स्वयं करुणा, रटा करती,
जिसे करुण अतीत कह कर।
गा रहे क्यों गीत कहकर ?

लिये है हर एक अक्षर—
कुछ न कुछ इतिहास मेरा,
विश्व ने विरही समझ—
जो कुछ किया उपहास मेरा।

जब न थे तुम भी बुलाते—
मुझे अपना मीत कहकर।
गा रहे क्यों गीत कह कर ?

कलित, कुसुमित, सौरभित—
हो जायँ सब आशा-लतायें,
आज हो अनुकूल,
कर दो संचरित ऐसी हवायें—

और तो सब कर चुके हो—
आदि से प्रतिकूल रहकर।
गा रहे क्यों गीत कह कर ?

मृत्यु का मेला

प्र०

इस जग में होता रहता—
हर समय मृत्यु का मेला।
क्या अपनी भी यात्रा में—
सखि आयेगी वह वेला ?

उ०

मृत्यु से अपना क्या नाता ?
उसकी बस यही चदरिया,
जब जी चाहे ले जाये—
मिट जाये विपति बदरिया।

हम तुम स्वतंत्र हो जायें
टूटें ये जग के बन्धन—
उस मुक्त जगत में हो फिर,
सुख से अपना सम्मेलन।

विदा के समय

तुमने कहा, "आज मत जाओ"
मैं कैसे क्या कहता ?

नियति नियत कर चुकी विदा थी—
फिर कैसे सँग रहता ?

बिछुड़न का आदेश लिये —
आया रे ! निठुर सबेरा ।

प्रेम—डाल से हाय ! उजाड़ा—
अपना मिलन—बसेरा ।
"जल्दी आना, भूल न जाना"
यही तुम्हारा कहना ।

शेष सभी अरमानों का—
बस आँसू बन-बन बहना ।

स्मृति-पट पर बना हुआ है—
सुमुखि ! वही तव रूप विचित्र ।

देखें भाग्य—चितेरी, कब—
खींचे फिर मधुर—मिलन का चित्र ?

मानो मतवाले बादल

मानों मतवाले बादल !
मत इतना शोर मचाओ।
मेरी दुखिया—पीड़ा को—
सो लेने दो, न जगाओ।

उनकी पुनीत स्मृति में—
पगली अबतक रोई है।
इतनी जल्दी मत छेड़ो—
वह अभी-अभी सोई है।

कुछ और नहीं, तुम-सी हैं—
उनकी आँखें कजरीली।
जिनको वियोग का सावन—
रखता है हरदम गीली।

तुमको लखते ही, बरबस,
उनकी सुधि आ जाती है।
उर के उजड़े आँगन में—
वेदना बसा जाती है।

घन! दया करो थम जाओ,
पल-भर तो सो लेने दो।
मेरे इस बोझिल मन को—
कुछ हलका हो लेने दो।

फिरतो हम तुम दोनों को—
इस जीवन भर रोना है।
इस श्वास-यान पर साथी!
बस आँसू ही ढोना है।

कहाँ उलझे मतवाले मन

कहाँ ! उलझे मतवाले मन ।
श्वास का क्या विश्वास अजान ?
सदा सम्मेलन—विच्छेदन ।
मतवाले मन ।

कल कहीं पाये थे बचपन—
सरल, सुखमय स्वप्निल बचपन।
भग गया वह देकर यौवन—
उछ्वसित यह उन्मद यौवन।

अरे ! यह देगा वृद्धापन—
जटिल झंझटमय वृद्धापन।
मिलेगा उससे विदा, गमन—
भयद मरघट में चिता-शयन।

यही इतना मानव-जीवन—
कौन सा इसमें आकर्षण ?
मतवाले मन !
कहाँ उलझे ?

मेरा कुछ भी अपराध नहीं

मेरा कुछ भी अपराध नहीं।
तुमने जहाँ कहा 'रुक जाओ—'
कहाँ बढ़े पग मेरे ?
'चल दो' सुनते ही, छोड़े—
मैंने अनगिनित बसेरे —
मरन या कि चिरजीवन की—
यह मेरी अपनी साध नहीं ॥
मेरा कुछ भी अपराध नहीं।

अपनी सुधि भी मत आने दो

अपनी सुधि भी मत आने दो,
जीवन-पथ पर अब मुझको—
बिन साथी ही जाने दो,
मत आने दो।

कौन ठीक यह तुमसे कह दे—
मेरी करुण कहानी ?
तव उर में फिर से न जगा दे—
सोई पीर पुरानी।

सुखी रहो तुम, मुझे भुला दो,
विरह-गीत गाने दो॥
मत आने दो।

करुणेश अपनी इस वेदना को

'करुणेश' अपनी इस वेदना को—
मैंने किसी से कभी कहा न था,
पर जब हृदय ही में आ बसे तुम—
तुमसे छिपाना भी था असम्भव।

उद्गार ने, आँसू ने, उसास ने—
मेरी व्यथा तुमसे नित कहा, पर—
निर्मम तुम्हारी उर स्थली में—
लता दया की कभी न उपजी।

मैंने तभी जाना, "इस जगत में,
कोई किसी का साथी नहीं है।
अपने किये का फल भोगने को—
आना अकेले जाना अकेले।"

कैसे तुम्हें भुलाऊँ

कैसे तुम्हें भुलाऊँ ?
लतिका लहर-लहर कर
तरु से लिपट रही है,
चपला चमक-चमक कर
घन से चिपट रही है।

इन प्रेमियों को कैसे—
पथ दूसरा दिखाऊँ ?

पृथ्वी को चूमता है,
नभ नित क्षितिज किनारे।
पथ जोहती किसी का—
ऊषा सदा सकारे।

इन पागलों के मन में,
वैराग्य क्या जगाऊँ ?

नित तपती दुपहरी में—
झुलसे हुए बगूले—
हैं खोजते किसी को,
बेचारे खुद को भूले।

जलते हुए दिलों की,
मैं आग क्या बुझाऊँ?

संगीतमय जगत में—
बस, उठती एक लय है—
"संसार प्रेममय है
संसार प्रेममय है"

इससे अलग बता दो—
बस्ती कहाँ बसाऊँ?
कैसे तुम्हें भुलाऊँ?

पगली की मौत

मरते दम वह मुसकाई थी।

कुछ भोले बच्चों की टोली,
बोली आजादी की बोली,
बरबस बरसाया था उस पर—
कुछ गुमराहों ने जब गोली।

उन लाशों से लिपट लिपट कर—
रोने को वह ललचाई थी।।
मरते दम—

पास पड़ा था टूटा काशा—
चिथड़े थे दुख की परिभाषा,
पर बलि-वेदी पर चढ़ने को—
मचली थी उसकी अभिलाषा।

अमर शहीदों की लाशों से—
भरी एक लारी आई थी ।।
मरते दम—

उसका सब भय दूर हो गया—
वही रक्त सिन्दूर हो गया ।
'धाँय' और बस पल में उसका—
सीना चकनाचूर हो गया ।

लेकिन उसके मुखड़े पर—
यक नैसर्गिक आभा छाई थी ।।
मरते दम—

तारों का गीत

खेल रहे थे तारे।
एक नया संसार रचे थे
जुगनू प्यारे प्यारे।

झलमल झलमल चमक रही थी
नभ-गङ्गा की धारा।
तैर रहे थे बादल राही
हँसता था ध्रुवतारा।

सभी मगन थे यद्यपि सब को—
मिटना था भिनसारे।
खेल रहे थे तारे।

उगल रहा था डर के मारे
जग को साँप—अँधेरा—
क्योंकि पूर्व में निकल रहा था—
हँसता चाँद सँपेरा—

बादल के नटखट बच्चों को—
करके एक किनारे ।
खेल रहे थे तारे ।।

सुधि बेसुध-सी पलट रही थी—
वह इतिहास पुराना ।
निरा असम्भव-सा लगता है,
अब जिसका दुहराना ।

जीवन से ऊबा-लेटा था,
मैं योंही मनमारे ।
खेल रहे थे तारे ।

ताक रहा था अरे ! जिसे मैं,
टूट गया वह तारा ।
जीवन ज्योति-दान में देकर
हँसता स्वर्ग सिधारा ।

उर-प्रदेश में मँडराई
यह कविता पंख पसारे ।
खेल रहे थे तारे ।

बोल उठी मेरे स्वर में,
"देखा तारों की मस्ती ?
पा जाता पीड़ित मानव भी,
यदि ऐसी अलमस्ती ।"

लग जाती तब तो उसकी भी
नैया किसी किनारे ।"
खेल रहे थे तारे ।

झोपड़ियों का गीत

कोयल बोल रही थी।
बोल रही थी, बोल रही थी,
कोयल बोल रही थी।

सावन की गोदी में, दुनिया—
थी खेलवाड़ मचाये।
उड़े जा रहे थे बादल—
सतरंगे पर फैलाये।

प्रकृति-नटी परिवर्तन के पट—
पल-पल खोल रही थी।
कोयल बोल रही थी।

खेतों में मजदूरिनियाँ
छेड़े थीं गीत रसीले।
पुरवइया कहती थी, "पंडित
तूभी थोड़ी पीले।"

बड़े बड़ों के धीरज को,
वह स्वर से तोल रही थी।
——कोयल बोल रही थी।

रस्सी-पटरे का वह झूला,
रे! वह डाल लचीली,
चरवाहिनियों की वे पेंगें,
वह कजरी दर्दीली।

झूले ही के सँग सँग, उनकी
ओढ़नी डोल रही थी।
कोयल बोल रही थी।

अधनङ्गे भूखे बच्चों की——
यक अल्हड़-सी टोली,
चबा रही थी महुआ हँस हँस,
कर में लिए कठोली।

सुख-दुख का रहस्य, दुनिया के,
सन्मुख खोल रही थी।
कोयल बोल रही थी।

दुखियाओं का गाँव, अरे! वह
झोपड़ियों की बस्ती।
किन्तु उसे संतोष दिये था,
वह अमोल अलमस्ती।

जगकी उलझन, आडम्बर में
जिसे टटोल रही थी॥
कोयल बोल रही थी।

मुझ राही की कैसी बस्ती

मुझ अल्हड़ का संसार कहाँ ?
मुझ राही की कैसी बस्ती ?

चल पड़ूं जिधर बस वही राह,
रुक रहूँ जहाँ, वह मंजिल है।
जो मिल जायें वे ही साथी,
लूं बैठ जहाँ वह महफिल है।

मुझको तो एक तमाशा-सी,
लगती है यह अपनी हस्ती।
मुझ राही की कैसी बस्ती ?

अपना कोई न कहीं अपना,
जीवन सपना, यह जग सपना,
जाने फिर भी पड़ता है क्यों—
चिन्ता की भट्ठी में तपना ?

उलझने उँडेला करती हैं—
जीवन-प्याले में मधु-मस्ती
मुझ राही की कैसी बस्ती ?

चलना है, चलता जाता हूँ,
इस मन को छलता जाता हूँ,
सुख से कैसा नाता ? अब तो—
दुख को भी खलता जाता हूँ।

देखूँ ले जाये कहाँ मुझे—
यह अल्हड़पन, यह अलमस्ती।
मुझ राही की कैसी बस्ती ?

बादलों का गीत

कुछ बादल मतवाले ।
गरज रहे थे गगन-देश-में—
जीवन मदिरा ढाले ।

दिनपति डुबकी लगा चुके थे—
सन्ध्या की लाली में—
निशा सुन्दरी दीप जलाये, थी
नीलम थाली में ।

झूम झूम कर बढ़ते थे वे—
शशिपट तन पर डाले ।
कुछ बादल मतवाले ।

कुछ बूँदों औ कुछ साँसों का
उनका ताना बाना ।
किन्तु इसी से ऊपर उठना,
उठकर रस बरसाना ।

उनकी भी पीड़ायें थीं—
पर वे थे उन्हें सम्हाले।
कुछ बादल मतवाले।

कहते थे "मानव! माना,
तेरा जीवन नश्वर है।
फिर भी ऊपर उठ कुछ कर तू,
आगे परमेश्वर है।

रोते-रोते युग बीते हैं,
अब तो हँसले, गा ले।
कुछ बादल मतवाले।।

शब्द-चित्र

तिरछी फेल्ट हैट यह सिर पर,
सुन्दर प्यारी-प्यारी।
काली-काली छोटी-छोटी,
मूँछें बनी कटारी।

बड़ी-बड़ी गर्वीली आँखें,
चेहरा भरा पुरा-सा,
इनके अंग-अंग से, है
यौवन आता उभरा-सा।

हाफ शर्ट यह ओपेन कालर।
नेकर कुछ-कुछ ऊँचा॥
हथकड़ियों, बेड़ियों बीच।
यह डंडा एक समूचा॥

इन पर फूल चढ़ाती हो तुम,
जिज्जी ये हैं कौन ?

बोलो, बोलो जल्द बताओ !
ओ तुम तो रोती हो मौन।

लल्लन यह सरदार भगतसिंह,
देश-प्रेम दीवाने,
बड़ी तपस्या से पाया था—
इनको भारत माँ ने।

किन्तु दुश्मनों को अखरी थी,
इनकी सजग, जवानी,
शासन दहल उठा था,
खा इनके झटके तूफानी।

मानवक्या ? दानव भी उस दिन,
सिसक-सिसक रोये थे।
इनके प्रान पखेरू जिस दिन
फाँसी पर सोये थे।

इसीलिये रोती हो तुम ? तो,
मैं अब कुछ न सुनूँगा।
मुझको जरा बड़ा होने दो,
मैं खुद भगत बनूँगा।

पगली से

क्यों भटक रही ओरी पगली ?
तय करती हुई शहर भरकी—
हर एक सड़क हर एक गली—
ओरी पगली !

घर-द्वार तुझे केवल सपना,
तेरा कोई न कहीं अपना,
फिर क्या बल क्या अधिकार तुझे—
जो रहती तू घर-घर मचली ?
ओरी पगली !

मानवता का पावन नाता ?
पूँजीपतियों को कब भाता ?
तेरा भी हिस्सा था जग में—
पर तू इनसे ही गई छली।
ओरी पगली !

किससे किसकी कैसी भिक्षा ?
ले ले जो कुछ तेरी इच्छा।
दे गदर मचा, दे लूट मचा।
बल की दुनिया, बन आज बली।
ओरी पगली—

भिखारिन से

कुछ सोच भिखारिन भोली।
क्यों फिरती बाँधे झोली?
भोली!

तेरा यह टूटा काशा—
जो तेरी जीवन आशा,
दुनिया को एक तमाशा—
तेरी दर्दीली बोली।
भोली!

सुनकर यह तेरा गाना—
कितने तो देते ताना,
कोई मुट्ठी भर दाना,
कुछ मट्ठा एक कठोली।
भोली!

अपने हक पर तू अड़ जा
पूँजीपतियों से लड़ जा,
डर क्या फाँसी पर चढ़ जा,
सँगले मँगतों की टोली।
भोली !

मधु ऋतु का गीत

मधुऋतु फिर से आई।
पपिहा की पी-पी पुकार,
फिर पड़ने लगी सुनाई।
मधुऋतु—

कलियाँ खिलीं, पवन प्रियतम से—
पा आलिङ्गन-चुम्बन।
कुसुम-कटोरों में मधु पी-पी—
अलि भरते निज गुंजन।
पियराई राई इतराई
अमराई बौराई।
मधुऋतु—

नव पल्लव-परिधान पहिन—
सज रहीं लता—वल्लरियाँ।

मान छोड़ हैं विकल मिलन-हित—
सब खग-मृग छोहरियाँ।

मदन महीपति के द्वारे पर
बजती अलि-शहनाई ॥

मधुऋतु—

गली-गली रस-सरिता उमड़ी—
शोभा नगर-नगर में,
प्रान-प्रान में श्याम किलोलें—
राधा डगर-डगर में,
कुंजों और कछारों में—
सुषमा लेती अँगड़ाई ॥

मधुऋतु—

दो दिन का सब ठाट अरे!
क्षणभंगुर यह रस-बेला,
पर कण-कण में लगा हुआ है—
हँसी-खुशी का मेला।
यद्यपि इनसे छिपी नहीं है—
पतझड़ की निठुराई।

मधुऋतु—

इसी भाव से जीना-यदि
मानव को भी आ जाता—
तो यद्यपि वह रोता आता—
जाता हँसता-गाता।

मिट जाती खुद ही उसके
पथ की सारी कठिनाई ॥
मधुऋतु फिर से आई ॥

इस जीवन का कुछ ठीक नहीं

हैं आज यहाँ, कल और कहीं
इस जीवन का कुछ ठीक नहीं।

इस जग को शूल भरा पाया,
उस नभ को धूल भरा पाया,
दुनिया ने अपनी यात्रा में—
कब आश्रय फूल भरा पाया?

वह दुख से दूर भगी, लेकिन—
पहुँची सुख के नजदीक नहीं।

जन-जन की अपनी राह अलग,
मन-मन की अपनी चाह अलग।
इस सागर में हर माँझी की—
है अपनी-अपनी थाह अलग।

युग बीत गये आते-जाते,
बन सकी आज तक लीक नहीं ।
इस जीवन का कुछ ठीक नहीं ।

हम पथ अपना निर्माण करें,
हम खुद अपना निर्वाण करें,
अपने इस नश्वर जीवन से--
दुनिया का कुछ कल्याण करें ।

जाने किस दम हो जाय कूच--
इस मंजिल का कुछ ठीक नहीं ।।
इस जीवन का कुछ ठीक नहीं ।

नये कदम

ये कदम बढ़े चलें, ये कदम।
देश प्रेम बावली जवान कौम के कदम।
ये कदम—

ये कदम बढ़े चलें,
एकदम बढ़े चलें,
लक्ष्य है समक्ष आज,
दम बदम बढ़े चलें।
ये कदम—

ये न एक के कदम,
ये हरेक के कदम,
सत्य पर टिकी हुई,
महान टेक के कदम,
ये कदम—

देश की जवानियाँ,
खून की रवानियाँ,
कह रही 'बढ़ो, बढ़ो,
अतीत की कहानियाँ।
ये कदम––

अब न और मोड़ हैं
अब न और होड़ हैं।
साथ एक-दो, नहीं––
अरे ! कई करोड़ हैं।
ये कदम––

लाल आसमान है,
जग रहा जहान है,
तुम भी बढ़ के देख लो––
कि हो रहा बिहान है।
ये कदम बढ़े चलें, ये कदम।

नदी का गीत

नदी बह रही थी।

पहाड़ों से नीचे गिराई हुई थी,
किनारों में दोनों फँसाई हुई थी,
अरे ! हर तरह से सताई हुई थी,
विवश थी, पतन की डगर गह रही थी।
नदी बह रही थी।

निगल कर उसे पेट सागर भरेगा,
बड़ा नाम वह रत्न-आकर धरेगा,
मगर कोई प्यासा न गागर भरेगा,
मिटी जा रही थी मरन सह रही थी।
नदी बह रही थी।

"बड़े, योंही जग को छले जा रहे हैं,
कि छोटों को निगले चले जा रहे हैं,

इसी से सभी को खले जा रहे हैं,"
वो रोती थी, रोकर यही कह रही थी।
नदी बह रही थी।

तूफ़ान

कौन रोकेगा हमें ?
हम बढ़ रहे तूफान लेकर।

रूढ़ियों के बन्द टूटे,
हिल रही दुनिया पुरानी।
मिट रही है स्वयं,
पूँजीवाद की काली निशानी

दलित, पीड़ित, शोषितों को,
क्रान्ति का आह्वान लेकर।
बढ़ रहे तूफान लेकर॥

जालिमों के झुलसने को,
चमचमाती-सी बिजलियाँ,
दुश्मनों के बोरने को,
झमझमाती-सी बदलियाँ

शक्ति से बरदान लेकर,
भक्ति से बलिदान लेकर।
बढ़ रहे तूफान लेकर।

छीन लेना है हमें—
छीना हुआ अधिकार अपना।
मुक्त करना है हमें—
बन्दी बना संसार अपना

दासता, शोषण, विसमता
आदि का अवसान लेकर।
बढ़ रहे तूफान लेकर॥

मन का मीत कहाँ मिलता है

जीवन की बीहड़ मंजिल पर—
मन का मीत कहाँ मिलता है ?

सुगम पंथ, पाथेय साथ, होने पर—
जग संगी बन जाता ।
दूर गगन का इन्द्रधनुष भी—
मनहर सतरंगी बन जाता ।

पर, पथरीली पगडंडी पर—
पुष्प पुनीत कहाँ खिलता है ?
मन का मीत कहाँ—

जग की उलझन से ऊबा मन—
सूने नभ से प्यार माँगता ।
अपनी दुनिया स्वयं लुटाकर,
सपनों का संसार माँगता ।

किन्तु वेदनाओं से बोझिल,
स्वप्निल गीत कहाँ हिलता है ?
मन का मीत कहाँ मिलता है ?

मजदूर गा रहा था

मजदूर गा रहा था—

दिन भर का भूखा-प्यासा, अधनंगा था बेचारा।
उस शाम की रोटी का बाँधे था कुछ सहारा।
बेफिक्री के नशे में वह चूर जा रहा था
मजदूर गा रहा था—

मैं था, कि सब था, फिर भी
इस जिन्दगी से ऊबा।
मन की गढ़ी बलाओं में—
यों ही डूबा—डूबा।

आडम्बरों में खुद को मजबूर पा रहा था।
मजदूर गा रहा था—

उसके सजग स्वरों ने मुझको बहुत बचाया।
"संतोष ही में सुख है", संकेत से बताया,

उसने मुझे सँभाला, मैं दूर जा रहा था।
मजदूर गा रहा था।

प्रानों को बन्धन क्यों भाता ?

प्रानों को बन्धन क्यों भाता ?
अरे ! किसी का हो जाने को—
मनमौजी मन क्यों अकुलाता ?
प्रानों को—

पीड़ा की दुनिया से कढ़ कर,
तड़पन सिहरन के सँग बढ़कर,
अरमानों के रथ पर चढ़कर,
आशाओं के पट में मढ़कर।

किसी एक हिय में बसने को—
कवि का गायन क्यों ललचाता ?
प्रानों को बन्धन क्यों भाता ?

कौन सी वह बात री सखि ?

कौन सी वह बात री सखि ?
जो कि तेरी स्मृति को—
रखती सजग दिन रात री सखि ?
कौन सी वह बात—

जहाँ इसने जन्म पाया—
कहाँ वह संसार सजनी ?
गूँजती बस दो दिलों में—
कौन यह झनकार सजनी ?

दृगों द्वारा कर गई जो—
हृदय पर आघात री सखि !
कौन सी वह बात—

आज जिस कारण, हमें हैं—
घूरती जगती निगाहें।

और हम तुम भी न जानें
भर रहे क्यों विकल आहें ?

बनाकर पागल हमें,
जो बन गई अज्ञात री सखि ।
कौन सी वह बात ?

कौनजाने ? किस तरह सुलझे—
सुमुखि अब यह पहेली ?
मुझे भी कृपया बताना—
बूझना यदि तुम पहेली ।

मैं स्वयं उलझा इसी में—
यह न होती ज्ञात री सखि !
कौन सी वह बात ?

जवानी का गीत

कहानी नहीं है, कहानी नहीं है।
खरीदा है इसको लड़कपन के दामों,
खिलौना अरे यह जवानी नहीं है।
कहानी नहीं है।

किधर रुख करें औ किधर डग उठायें ?
किधर चल पड़ें औ किधर मग बनायें ?
जो डरते हैं ऐसा न हो डगमगायें—
वे मुरदे हैं उनमें जवानी नहीं है।
कहानी नहीं है।

जवानी जिधर चल पड़े वह डगर है,
जवानी जहाँ टिक रहे वह नगर है,
जवानी के सँग में अगर न मगर है,
जवानी का कोई भी सानी नहीं है।
कहानी नहीं है।

निगाहों पै देखो गँवाओ न इसको,
अदाओं पै देखो लुटाओ न इसको,
सम्हालो, सम्हालो मिटाओ न इसको,
जवानी नहीं, जिन्दगानी नहीं है।
कहानी नहीं है।

इसी में गरीबों की आजादियाँ हैं,
इसी में अमीरों की बरबादियाँ हैं,
यहीं इन्कलाबों की आबादियाँ हैं,
ये, सब सच है सच, लन्तरानी नहीं है।
कहानी नहीं है।

जवानी गँवा दो, वतन जब कि माँगे,
जवानी लुटा दो, वतन जब कि माँगे
जवानी मिटा दो, वतन जब कि माँगे
जो मिट जाय यह वह निशानी नहीं है।
कहानी नहीं है॥

जनतंत्र

दिनपति का साम्राज्य छिनगया,
तारों का शासन है।
उनके ही सँग उनके प्रतिनिधि—
शशि का भी आसन है।

चारों ओर शान्ति-शीतलता—
जग सुख से सोता है।
सच है जनता के शासन में—
सुख ही सुख होता है।

पूजा का गीत

मन्दिर में पूजा होती है।
पत्थर पर लड्डू चढ़ते हैं,
मानवता भूखी रोती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

जठराग्नि बुझाने को—
जिन्दा लाशें हैं लाशें नोच रहीं,
अधमरी परी टोलियाँ कहीं—
गन्दी नालियाँ खरोंच रहीं।

पर, हवन-कुन्ड धधकाने को—
घी की धारा लौ धोती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

मुरदे यों ही दफना देते—
कफनाने का सामान नहीं,

रोती हैं लाखों द्रोपदियाँ—
उनका कोई भगवान नहीं।

पर पत्थर के परमेश्वर पर—
चढ़ती रेशम की धोती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

कितने हैं जिनके रहने को,
है तिनके की भी छाँह नहीं,
जीवन फुट-पाथों पर कटता—
रक्षक कोई भी बाँह नहीं।

पर देवालय बनवाने में
लग जाता सेरों मोती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

'प्रभु को सुमिरो वह सब देगा—'
मन्दिर का है उपदेश यही।
'मिटती न लकीरें किसमत की—'
मस्जिद का है सन्देश यही।

'खालिक मालिक बस ईसा है,'
गिरजाघर में ध्वनि होती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

भगवान, भाग्य, मन्दिर-मसजिद,
गिरजाघर ये ऐसे बन्धन।
जिसमें बँध कर भोली-जनता,
करती है युग-युग से क्रन्दन।

पर इन्हें मिटाने की ज्वाला—
ताज़ुब है अब भी सोती है।
मन्दिर में पूजा होती है।

देखना बिसरा न देना

देखना बिसरा न देना।
पा गया है प्रान-पंछी—
आश के दो चार तिनके,
काटता जाता समय है—
उन्हें बिनके खूब गिनके।

बिस्मरण की वायु से—
इनको कहीं बिखरा न देना
देखना बिसरा न देना।

मन में मन की बात रह गई

मन में मन की बात रह गई।

तारों की वह भीड़—वहाँ ?
निशि से निशिपति मन की क्या कहता ?
डूब गया वह रोता-रोता,
नभ-गङ्गा में बहता-बहता।

चमकी ओस उषा मुसकाई,
रोती पीली रात रह गयी,
मन में मनकी बात रह गई।

था संयोग हो गई निश्चित—
तिथि उनसे एकान्त मिलन की।
उस पर ही इतराईं कुछ दिन—
साधें सब मेरे जीवन की।

वह पल बीता, जीवन रीता,
आँखों में बरसात रह गई ॥
मन में मन की बात रह गई ।

उन्हीं से कहूँ, वे न खुद याद आयें

उन्हें भूलने की बड़ी साधना की—
उन्हीं से कहूँ, वे न खुद याद आयें।

खुले हों कमल, तो
अधर बन लुभाते।
मुँदे हों कमल, तो
नयन बन रुलाते।

उन्हीं से कहूँ, वे करें ऐसा जादू—
कमल खुल न पायें,
कमल मुँद न पायें॥
न खुद याद आयें।

पहला दीप जला

पहला दीप जला।
और दूसरे नये दीपकों को
लौ लिये चला।
पहला दीप जला।

ज्योतित आँगन-द्वार-गली सब
ज्योतित रे! वह पनघट,
गृह सुन्दरियाँ रस छलकातीं—
जहाँ भरे जीवन-घट।

इसी दृश्य से अनुप्राणित हो—
कवि का मन मचला।
पहला दीप जला।

नन्हा-सा यह दिया,
और इसमें यह इतना साहस।

अंधकार पी जीता लड़ता—
तूफानों से हँस-हँस ।

इस विचार-मंथन से ही
यह भाव-रत्न निकला ।
पहला दीप जला ।

जल रे ! प्रान-दिये तू भी जल,
जग-दुख-तम पी-पी कर,
जन-मन-दिये जलाता चल रे !
झंझा में जी-जी कर ।

इस जलने में छिपी हुई है,
जीवन - ज्योति - कला ।
पहला दीप जला ।

धरती-आकाश

धरती में कितना रस है—
आकाश भला क्या जाने ?

यों तो सुमनों का सौरभ—
जग को महका ही देता।
कोयल का गीत सुहाना,
मन को बहका ही लेता।

पर उनके सँग मरुथल भी—
जब मधुवन, बन जाता, तो—
उस मधुवन के मधुरस को—
मधुमास भला क्या जाने ?
आकाश भला क्या जाने ?

सब बात वहीं बह जाती,
जब कोई 'हाँ' कह देता।

सब बात वहीं रह जाती,
जब कोई 'ना' कह देता।

पर "हाँ - ना' दोनों नयनों—
अधरों में जब सँग हों—तो—
उस 'हाँ-ना' - मिश्रित सुख को,
विश्वास भला क्या जाने ?

आकाश भला क्या जाने ?

लड़ने को लड़ते लाखों—
कुछ ही बनते सेनानी,
फाँसी पर चढ़ते लाखों—
कुछ ही बनते बलिदानी।

पर, जग - कारा में, तम पी—
जो जन - मन - दीप जलाते,
उन अमर शहीदों का यश—
इतिहास भला क्या जाने ?

आकाश भला क्या जाने ?

अधरामृत को भी तजते—
जग ने नव यौवन देखा।
भुज-वल्लरियों से सजते —
जग ने वृद्धापन देखा।

पर जीवन भर परहित में—
जिसका हर क्षण कटता है—

उस गृह-तपसी की गरिमा—
सन्यास भला क्या जाने ?
आकाश भला क्या जाने ?

जाने कैसे बुन उठता—
ताँतों का ताना-बाना ?
जिसपर साँसें गाती हैं—
जीवन का सहज तराना।

पर ताँतों औ साँसों में—
सम्बन्ध सिर्फ छूने का,
छू कर हटने के फल को—
निश्वास भला क्या जाने ?
आकाश भला क्या जाने ?

प्यार न बन जाये

यह लाज भरी मुसकान,
किसी दिन प्यार न बन जाये।

आँखों ने आँखों को देखा,
मन ने पाया मन का लेखा,
प्रानों की सिहरन ने खींची,
अधरों पर सुस्मिति की रेखा।

यह रेख हमारे बन्धन का,
आकार न बन जाये॥

किसी दिन—

यह टीस, कसक, उलझन, सिहरन,
हरदम मन का रहना उन्मन,
सब मिट जायें, यदि मिट जाये,
यह जीवन का एकाकीपन।

यह अभिलाषाओं की माला,
उपहार न बन जाये ।।
किसी दिन—

हम बन जायें जीवन-सहचर,
इतिहास रचें सुख-दुख सहकर,
दुनिया दे दे आसीस हमें,
नवयुग के नव प्रणयी कहकर ।

यह मधुर मिलन की साध,
कहीं अधिकार न बन जाये ।।
किसी दिन प्यार न बन जाये ।

पंछी तुम मत नीड़ बनाना

पंछी तुम मत नीड़ बनाना,
तिनके क्या ? कण-कण बन्धन हैं,
देखो इनमें उलझ न जाना।
पंछी तुम मत नीड़ बनाना।

मधुऋतु की मदिरिल बयार—
ये लतिकायें लचकीली,
ये हँसते से सुमन, और
ये कलिकायें शरमीली,

रूप - जाल यह महाजाल है—
इसके फन्दे में मत आना।
पंछी तुम मत नीड़ बनाना।

विस्तृत नभ में रवि बिन साथी—
चलता ही रहता है।

बीहड़ बन में सिंह अकेला—
पलता ही रहता है।

अरे ! अकेलेपन की पीड़ा में—
मधु है—यह भूल न जाना
पंछी तुम मत नीड़ बनाना।

तुम ऐसे कुछ और विहँग भी, तो—
उड़ते ही होंगे।
मोड़ों की परवाह न करके,
निज इच्छा से मुड़ते होंगे।

वे मिल जायें तो उनके ही—
सँग-सँग उड़-उड़ जी बहलाना।
पंछी तुम मत नीड़ बनाना।

रूप की माधुरी

रूप की माधुरी पी छके प्रान हैं,
अब सुधा-पान की भी पिपासा नहीं।

वे नशीले नयन मस्त हैं कर रहे
वे रसीले बैन मस्त हैं कर रहे,
अंग प्रत्यंग से मधु छलक-सा रहा,
वे गँसीले सैन मस्त हैं कर रहे।

इन नशों में मुझे बेखुदी* मिल गई,
अब सुरा-पान की भी पिपासा नहीं।
अब सुधा-पान—

बेखुदी क्या मिली, अर्चना खिल उठी,
बेखुदी क्या मिली, वन्दना खिल उठी,

* आत्म विस्मृत

यह हमारा - तुम्हारा मिलन क्या हुआ ?
सिद्धि पाकर स्वयं साधना खिल उठी ।

जिन्दगी उस जगह आ गई है जहाँ,
अब क्षुधा, पान की भी पिपासा नहीं ।।
अब सुधा-पान की भी पिपासा नहीं ।

मैं तब तक ही जिऊँ

मैं तब तक ही जियूँ, कि जब तक—
मेरे जीने की कला,
जीवन से ऊबे प्रानों को,
नव उल्लास दे सके ॥

शंकर विष पीकर शिव हुये,
दिवस अँधियारी पीता है,
जग-दुख-तम पीने वालों ने,
सदा मृत्यु को जीता है।

अन्यायों के विष-घट से,
संघर्षों के प्याले भर-भर,
मैं तब तक ही पिऊँ, कि जब तक—
मेरे पीने की कला,

शोषण से झुलसी दुनिया को
चिर मधुमास दे सके।
मैं तब तक ही जिऊँ।

धरती के चक्कर खाने से,
ऊषा का निर्माण हो सका,
चक्कर खाने वालों से ही,
जग का कुछ कल्याण हो सका।

जीवन-पथ पर फूलों अथवा शूलों पर,
निज दृढ़ पग धर-धर।
मैं तब तक ही चलूँ, कि जब तक
मेरे चलने की कला।
पथ से हारे पथिकों को भी,
नव विश्वास दे सके।।
मैं तब तक ही जिऊँ।

नभ में सूरज चढ़कर ढल कर,
जग को ज्योतिर्दान दे सका।
नन्हा सा दीपक जल-जल कर,
शलभों को निर्वाण दे सका।
प्रान-दीप में स्नेह, स्नेह में,
साँसों की वर्तिका सँजोये।
मैं तब तक ही जलूँ, कि जब तक,
मेरे जलने की कला।

तम में भटक रहे मानव को,
धवल प्रकाश दे सके।
मैं तब तक ही जिऊँ।

मौत से कह दो

मौत से कह दो रुके, चाहे तो वह भी सुन ले,
एक गीत और जरा उनको सुना लूँ तो चलूँ ॥

मैंने गाया है बहुत, उनको बुलाने के लिये।
मैंने गाया है बहुत, खुद को भुलाने के लिये।
'उनको पाने के लिये, अपने को खोना पड़ता—'
बस यही बात, जमाने को बता लूँ तो चलूँ ॥
एक गीत और—

हम मिले थे कभी संयोग से गाते-गाते।
आज भी सुन लें, सुनालें अरे ! जाते-जाते।
'यों हीं सुनने औ सुनाने में जो क्षण कटते हैं—'
'जिन्दगी है वही' दुनिया को बता लूँ तो चलूँ ॥
एक गीत और—

गीत गाते हैं, जो बस चाँद सितारों वाले।
गीत गाते हैं, जो बस इश्क इशारों वाले।

इश्क-आकाश इन्हीं दोनों में उलझे हैं जो—
उनको धरती से जरा प्यार करा लूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और—

जिसने सुख खो दिया, अज्ञान में सोते-सोते ।
जिसने दुख बो लिया, नैराश्य में रोते-रोते ।
अपने गीतों में नई ज्योति की किरनें भर कर—
सोये मानव को जरा और जगा लूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और—

पानी-पत्थर की लकीरों से ही बँटते-बँटते,
नाश कर लें न ये अपना कहीं कटते-छँटते ।
आज अणुबम लिये लड़ने चले आदम वाले—
आदमी को जरा इन्सान बना लूँ तो चलूँ ।
एक गीत और—

पूँजीपतियों की मदद करना धरम है जिसका ।
दीन-दुखियों का लहू पीना करम है जिसका ।
जोर औ जुल्म की बारूद पै बैठा है जो—
ऐसे शासन में जरा आग लगा दूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और—

जल के जब राख बने, राख की ढेरी बन जाय ।
दिन की अँधियारी मिटे रात उँजेरी बन जाय ।
पूरी ढेरी को उड़ा दे जो निशानी न रखे—
ऐसा तूफान नये युग का उठा दूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और—

आदमी एक है सब, भेद की बातें कैसी ?
शान्ति संतोष रहे खेद की बातें कैसी ?
ऊँच औ नीच का सब भेद मिटे, समता हो——
विश्व-बन्धुत्व का यह पाठ पढ़ा लूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और——

कौन सी जल्दी है, चल के वहाँ करना क्या है ?
कौन सी जल्दी है, चल के वहाँ धरना क्या है ?
करने-धरने की जगह तो यही दुनिया ही है——
सारी दुनिया को मैं प्रानो में बसा लूँ तो चलूँ ।।
एक गीत और——

क्या जरूरी है कि मौत आयी है तो जाऊँ ही ?
क्यों न उसको भी यहीं रोक लूँ समझाऊँ ही ?
जिन्दगी-मौत जरा साथ रहें, लुत्फ रहे ।
अब तो मैं सोच रहा हूँ कि चलूँ या न चलूँ ।।
एक गीत और——

विधान आखिर विधान ही है

कहीं भटक ले कितना भी कोई,
विधान आखिर विधान ही है।

लिये सब अपनी कहानियाँ हैं,
सरल सलोनी जवानियाँ हैं।
इन्हें न चाहे तो किसको चाहे—
जवान, आखिर जवान ही है।

विधान—

माना कि आँसू छलक चुके हैं,
न छलके जो वे झलक चुके हैं।
व्यथा न छिप पाती चितवनों से—
निशान आख़िर निशान ही हैं।

विधान—

तुम्हें जो भाया वही सुनाया,
अपनी खुशी से क्या मैंने गाया ?
मगर सुनी अनसुनी करो तुम,
जहान आखिर जहान ही है।
विधान—

बहुत सिखाता हूँ सब सुनाये,
'तुम्हारा हूँ मैं' यह भी बताये।
पर तुमसे मिलने पर यह न खुलती—
जबान आखिर जबान ही है।
विधान—

माना कि बदली सी घिर रही है,
तरी भँवर में ही तिर रही है।
रहेगा लेकिन अँधेरा कब तक—
बिहान आखिर बिहान ही है।
विधान आखिर विधान ही है।

बनाया शशि-शावक आदमी ने—
मचाया कोलाहल इस खुशी में,
असंख्य रवि-शशि वाला गगन चुप
महान आखिर महान ही है।
विधान—

कहीं तो तिल भर ऐसी धरा हो,
जहाँ न कोई कभी मरा हो।
फिर क्या ठिकाना इस जिन्दगी का
मसान आखिर मसान ही है।
विधान आखिर विधान ही है।

नयन बरबस भर आते हैं

तुम्हारे 'ना' की करके याद,
नयन बरबस भर आते हैं।

कामनायें कुम्हला जातीं,
अर्चनायें अकुला जातीं,
हाय रे हाय ! समय की बात,
साधनायें सकुचा जातीं।

हृदय रो रो करता फरियाद,
नयन बरबस भर आते हैं।।

छितिज पर मिले अवनि आकाश,
चाँद को कसे लहर-भुज-पाश,
प्रकृति का मिलनोत्सव है आज,
सुमुखि तुम करो न मुझे निराश।

तोड़ दो ना तुम भी मर्याद,
नयन बरबस भर आते हैं।

ना कह करके क्या कर डाला ?

'ना' कह करके क्या कर डाला,
इस पर भी विचार कर लेना।

युग-युग के संचित सपने,
इस एक शब्द से चूर हो गये।
अरमानों के ढेर पिघलकर,
बहने को मजबूर हो गये।

इनको भी पाला है तुमने,
इनसे भी दुलार कर लेना।

कुछ सकुचाई सी लगती है,
'ना' कहती तसवीर तुम्हारी।
जैसे तुमसे बिगड़ रही हो,
बनती-सी तकदीर हमारी।

शायद कोई भूल हो गयी है,
उसका सुधार कर लेना॥

गगन का चाँद क्या देखूँ ?

अवनि के शशि हमारे हैं।
गगन का चाँद क्या देखूँ ?

अवनि के शशि हैं ऐसे,
जो कि हँसते बोलते तो हैं।
डगर कैसी भी हो, लेकिन—
वे सँग-सँग डोलते तो हैं।

अधर से, शुष्क-जीवन में—
सुधा-रस घोलते तो हैं।
कभी भुज-पाश में कसते,
कभी दिल खोलते तो हैं।

अवनि के शशि पियारे हैं
गगन का चाँद क्या देखूँ ?

गगन के चाँद की दूरी—
अगम है, कौन जाता है ?
अरे ! परदेशियों से दिल,
कहीं कोई लगाता है।

टँगा है शून्य में योंही,
निरा निष्प्राण गोला है।
चकोरों ने बहुत पटका है सर,
पर यह न बोला है।

अवनि के शशि सहारे हैं,
गगन का चाँद क्या देखू ?

रिझाने को इन्हें, निशि में—
गगन का चाँद आता है।
बिछाता जाल किरनों का,
जलद में मुँह छिपाता है।

कभी घटता कभी बढ़ता—
बड़े बानक बनाता है।
इसी से है प्रमाणित, खुद को—
इनसे कम ही पाता है।

अवनि के शशि दुलारे हैं—
गगन का चाँद क्या देखूँ ?

अन्तर्ज्वाला

शक्ति झुका ले शीश भले—
पर अन्तर्ज्वाला का क्या होगा ?

यह नित धधकी, धधक रही है,
और धधकती ही जायेगी।
जब तक जग की विषम, विषमता को—
यह भस्म न कर पायेगी।

माना जलना और जलाना,
प्रकृति पुरुष के शाश्वत क्रम हैं,
पर यदि आहुति ही न रही तो,
इस मख-शाला का क्या होगा ?
अन्तर्ज्वाला का क्या होगा ?

अणु के इस विध्वंसक युग में,
मानव, दानव बनता जाता।
शान्ति-सुलह की बात बहुत है—
पर हर क्षण रण ठनता जाता।

माना सृजन-प्रलय दोनों ही,
संसृति के चिरसत्य नियम हैं।
पर वट-पत्र न बच पाया तो—
सिरजन-शाला का क्या होगा?

अन्तर्ज्वाला का क्या होगा?

चारों ओर शोर है, "साथी,
पीना छोड़ो पीना छोड़ो
जीवन में मादकता ढूँढ़ो
अंगूरी से नाता तोड़ो।"

फिर भी मैं पीता जाता हूँ,
क्योंकि मुझे यह भय लगता है—
पीने वाले ही न रहे तो—
इस मधुशाला का क्या होगा?

अन्तर्ज्वाला का क्या होगा?

शिव-धनु-भंग-कथा दुनिया ने,
बहुत सुनी है, बहुत सुनेगी।
मन अनुरूप पात्र चुन चुन कर,
सब के सब गुण-दोष गुनेगी।

किन्तु राम के मनके उस—
असमंजस का अनुमान अगम है।
यदि शिव-धनुष न टूटा तो—
सिय की जय-माला का क्या होगा ?

अन्तर्ज्वाला—

मृग-नयनी को योग सिखाने—
ऊधव ब्रज की ओर चले थे।
ज्ञान-गूदरी में सब था, पर—
उनके मन में चोर पले थे।

साँसों के सरगम का हर स्वर—
उनसे यह कहता जाता था :
यदि राधा ने 'हाँ' न किया तो—
इस मृगछाला का क्या होगा ?

अन्तर्ज्वाला—

वासवदत्ता के सपनों में,
गौतम की गरिमा का चित्रण,
छाया था उसके प्राणों पर,
उस दिन स्वीकृत हुआ निमंत्रण।

निश्चय था आयेंगे, पर कब ?
इतना ही उसको संशय था।
अगर तथागत भूल गये तो,
मुझ विषबाला का क्या होगा ?

अन्तर्ज्वाला—

सुमुखि ! तुम्हारी रूप-माधुरी,
मैं नयनों से पीता आया।
नहीं, नहीं के बैनों को सह—
अब तक ज्यों-त्यों जीता आया।

पर अब कुछ ऐसा लगता है,
मैं इस स्वर को सह न सकूँगा।
यदि 'हाँ' के रस से न भरा तो,
जीवन प्याला का क्या होगा?

अन्तर्ज्वाला—

९

वह क्षण

वह भी तो कोई क्षण होगा।
धरती की गोदी को अर्पित,

जब काया का कण-कण होगा।
वह भी तो कोई क्षण होगा।

पुर-जन, परिजन छोड़ चलेंगे,
सब शव से मुख मोड़ चलेंगे,
आँसू की अन्तिम बूँदों को—
नयन निचोड़—निचोड़ चलेंगे।

चुम्बित आलिंगित शरीर पर—
कंटक—कंकड़ वर्षण होगा।
वह भी तो कोई क्षण होगा।

अथवा जल में फेंक चलेंगे—
कच्छप, मत्स्य अनेक पलेंगे।

कहीं लपेटे में आये तो—
मगरमच्छ सीधे निगलेंगे।

बह कर लगे किनारे तब तो,
गृद्ध-शृगाल निमंत्रण होगा।
वह भी तो कोई क्षण होगा।

संभव है कुछ चिता सजायें,
हर अवयव की राख बनायें,
अन्तरिक्ष के महाशून्य में,
पवन देव उसको बिखरायें।

सुमुखि! तुम्हारे रूप-जाल का,
वह अन्तिम आकर्षण होगा।
वह भी तो कोई क्षण होगा।

यश वैभव की अतुलित माया,
अधरों पर अधरों की छाया।
साँसों ही के साथी ये सब,
कोई साथ न ले जा पाया।

फिर के लिए अभी मत खोओ—
फिर ही फिर का कारण होगा
वह भी तो कोई क्षण होगा।